प्रथम अध्याय

परंपरा और आधुनिकता की अवधारणा

परंपरा और आधुनिकता के संबंध में प्राय: यह धारणा बन जाती है कि दोनों एक-दूसरे के विरोधी तत्त्व हैं। सामान्यतः लोग परंपरा और रूढ़ि को समानार्थी मान लेने के कारण या भ्रमवश परंपरा को अपरिवर्तनशील और ठहरा मानकर आधुनिकता का विपरीत तत्व मान लिया जाता है और सिर्फ आधुनिकता को ही गतिमान और विकासशील माना है, जबकि परंपरा और आधुनिकता के संबंध में यह धारणा वस्तुनिष्ठ नहीं है। परंपरा और आधुनिकता एक-दूसरे के विपरीत न होकर के एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों का संबंध काया और छाया के समान है, "जो आज आधुनिक है, वह भी कल परंपरा का रूप ग्रहण करेगा और इसी प्रकार, परंपरा भी कभी आधुनिक रही होगी। इसलिए परंपरा में परिवर्तन की शक्तियों को ही आधुनिक कहते हैं।"[1] परंपरा निरपेक्ष दृष्टि कभी भी आधुनिक समाज का निर्माण नहीं कर सकती है। आज का आधुनिक कहा जाने वाला युग मूल्यों के विघटन का युग कहा जा सकता है। नूतन मूल्यों को भी आसानी से समाज में स्थान नहीं मिलता है, उसे भी प्रामाणिक आधार देना होता है। परंपरा को जाने बिना आधुनिकता के अर्थो को नहीं समझा जा सकता। साहित्य के सन्दर्भ में भी परंपरा एक आवश्यक तत्व है, जहाँ से साहित्य रस प्राप्त करता है, इसलिए साहित्य में आधुनिक भाव बोध हेतु परंपरा की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। परंपरा उपेक्षित साहित्य कभी न तो आधुनिक और न वह समाज के लिए मार्गदर्शी हो सकता है। आधुनिकता परंपरा की सबसे नवीन कड़ी मानी जा सकती है, ऐसे में कोई भी आधुनिक कहा जाने वाला समाज अपनी जाति के विकास, उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन परंपरा से विच्छिन्न होकर नहीं कर सकता है, परंपरा आधुनिकता का किस प्रकार अभिन्न अंग है, इसे समझने के लिए हम निराला की रचना 'राम की शक्ति पूजा' का उदाहरण ले सकते हैं, निराला राम को आधुनिक संदर्भों में स्थापित करते हैं। निराला की रचनाओं में राम एक अवतारी पुरुषोत्तम नहीं हैं, बल्कि वह एक आधुनिक युग

के मानव राम हैं, जो पराजित भी होते हैं और इस पराजय से उन्हें शोक भी होता है। परंतु संघर्षरत रहने पर विजय भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार निराला की रचनाओं में हम देख सकते हैं कि परंपरा कोई स्थूल तत्व नहीं बल्कि एक जीवंत प्रवाहमान मूल्य है। अतः परंपरा और आधुनिकता एक-दूसरे के पूरक हैं, जो एक साथ मिलकर समाज को गति देते हैं, उसे दिशा देते हैं।

परंपरा और आधुनिकता के संबंधों को संक्षेप में समझने के पश्चात् परंपरा और आधुनिकता की अवधारणा को विस्तार रूप में भी समझना आवश्यक है। अतः उनसे संबंधित कुछ विद्वानों के मत और कुछ शोधपरक दृष्टि इस प्रकार हैं -

हर एक समाज की अपनी एक परंपरा होती है। परंपरा से समाज प्राचीनकाल से ही बीज तत्व ग्रहण करते आ रहा है। परंपरा किसी भी समाज के व्यक्ति और वर्ग को एक सूत्र में बाँधने और उसे संगठित करने का कार्य करती है। परंपरा शब्द को देखें तो इसमें 'पर' की आवृति है- परम+परा। 'पर' शब्द का प्रयोग कई अर्थो में किया जाता है- अतीत, परे, श्रेष्ठ। ऐसे देखें तो परंपरा में श्रेष्ठता का भाव होता है। परंपरा एक ऐसा माध्यम है जिससे हम प्राचीनकाल से चले आ रही रीति-रिवाजों, प्रथाओं और विचारधाराओं को जान-समझ सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि परंपरा किसी भी समाज की युगों से संचित वह निधि है, जिसके माध्यम से हम उस समाज के व्यक्तित्व को जान-समझ सकते हैं। हर एक युग अपनी परंपरा सतत रूप से अपने अगले युग को श्रृंखलाबद्ध तरीके से देता चला जाता है। जिसमें जीवन का संघर्ष है, अनुभव है, वस्तु, आन्दोलन, अनुभूति, सत्य, प्रयोग, आस्था तथा विचारकर्म आदि हैं। अतः यह युगों-युगों से चला आ रहा प्राकृतिक क्रम है। सदियों से परंपरा के इस सतत बहाव को हम जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' के काम सर्ग के इस उद्धरण से समझ सकते हैं,

"यह नीड़ मनोहर कृतियों का

यह विश्व कर्म रंग स्थल है,

है परंपरा लग रही यहाँ

ठहरा जिसमें जितना बल है।"[2]

कामायनी के 'कर्म सर्ग' से एक और उद्धरण जो परंपरा से संबंधित एक बेहतर उदाहरण है,

"परंपरागत कर्मों की वे कितनी सुन्दर घड़ियाँ

जीवन साधन को उलझी हैं जिनमें सुख की घड़ियाँ।"[3]

इस प्रकार इन उद्धरणों से काल युग के विस्तृत सन्दर्भों में परंपरा का महत्व स्थापित हो जाता है।

साहित्य के सन्दर्भ में परंपरा का अर्थ अपनी सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान और सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपों का गहरा बोध है। इस परिप्रेक्ष्य में साहित्यकार का परंपरा संबंधी ज्ञान जितनी दूर तक और जितना गहरा होगा, उसका साहित्य संबंधी ज्ञान उतना ही स्पष्ट होगा, "प्रत्येक कृति साहित्यिक परंपरा का अंग होती है। कोई भी कृतिकार परंपरा से कटकर साहित्य सृजन नहीं कर सकता है। जीवन और साहित्य के रेशे-रेशे में परंपरा व्याप्त रहती है।"[4] हिंदी साहित्य की अगर बात करें तो उसे सांस्कृतिक धरोहर परंपरा से ही प्राप्त हुई है। वही जीवन-मूल्य उसे उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है, "व्युत्पत्तीय दृष्टि से आंग्लभाषा से 'ट्रेडिशन' शब्द से बना है। 'ट्रेडिशन' शब्द का पर्यायवाची शब्द 'परंपरा' है। वास्तव में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने के कारण उनमें यह विश्वास जन्म जाता है कि ये मूल्यवान है। समाज में एकता एवं सांस्कृतिक सुदृढ़ता के निर्मायक तत्व के रूप में यह विश्वास पनपता जाता है।"[5]

हरि कृष्ण रावत अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्र विश्वकोश' में परंपरा संबंधी विश्लेषण में लिखते हैं, "परंपरा परिपाटियों का पुंज है जो कुछ व्यवहार संबंधी मानदंडों एवं मूल्यों को इस आधार पर अपनाये जाने या संपन्न किये जाने पर बल देती है कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। बहुधा इन परंपराओं के साथ व्यापक से स्वीकृत कर्मकांड या प्रतीकात्मक व्यवहार के

अन्य स्वरूप जुड़े होते हैं।"[6] इस प्रकार कृष्ण रावत परंपरा के रूप तथा उसके दायित्व को परिभाषित करते हैं और उसे एक परिपाटी का पुंज बताते हैं। अतः परंपरा का रूप वास्तविक और काल्पनिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है।

"अमेरिकन इनसाइक्लोपीडिया 'ट्रेडिशन' को मौखिक सूचनाओं, विश्वासों तथा जानी-पहचानी चीजों का ऐसा स्वरूप मानता है, अपने आने वाली पीढ़ी को सौंप जाती है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रत्येक भूतकाल आने वाले वर्तमान को कुछ मौखिक व्यवहार देकर जाता है। इस प्रकार पौराणिक और परंपरा के बीच कोई स्पष्ट रेखा खींच पाना बड़ा ही मुश्किल है।"[7]

डॉ. हरदेव अपने हिंदी शब्दकोश में परंपरा की परिभाषा देते हैं, "चला आता हुआ क्रम, अटूट सिलसिला, प्रथा, प्रणाली, रीति-रिवाज।"[8]

1.1. परंपरा की भारतीय अवधारणा-

परंपरा के सन्दर्भ में भारतीय चिंतकों, साहित्यकारों ने अपनी-अपनी परिभाषाएं दी हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी परंपरा की परिभाषा देते हुए लिखते हैं, "परंपरा का शब्दार्थ है, एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है। 'परंपरा' जीवन प्रक्रिया है जो अपने परिवेश के संग्रह-त्याग की आवयश्कताओं के अनुरूप निरंतर क्रियाशील रहती है। कभी-कभी इसे गलत ढंग से अतीत के सभी आचार-विचारों का बोधक मान लिया जाता है।"[9] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी परंपरा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, परंपरा आधुनिकता की विरोधी नहीं है बल्कि वो तो उसकी पूरक है, "परंपरा इतिहास नहीं है, वह इतिहास देवता की यात्रा का आखिरी पड़ाव है। क्योंकि हर परंपरा किसी न किसी तत्कालीन आधुनिक समझे जाने वाले आचार-विचार का कँटा-छँटा रूप है- संस्कृत भी, विकृत भी।"[10] द्विवेदी जी परंपरा के सन्दर्भ में कहते हैं कि परंपरा में निरंतरता होती है और गतिशीलता उसकी अनिवार्य तत्व है। भाषा का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि आधुनिक खड़ी बोली हिंदी वैदिक आर्य भाषा से निरंतरता पाती है अर्थात् वैदिक आर्य भाषा

परंपरा से संबंध रखती है, किन्तु वक्त के साथ इसके स्वरूप में इतने बदलाव आ चुके हैं कि उसे उसी रूप में नहीं जाना जा सकता है पर इसका यह मतलब नहीं कि वह इस परंपरा का नहीं है। उसकी सारी विशेषताएँ तत्व रूप में उस भाषा में विद्यमान हैं।

सांस्कृतिक और दार्शनिक परंपरा का विवेचन करते हुए जयशंकर प्रसाद ने इनका संबंध उपनिषद् की आनंदवादी परंपरा तथा बौद्धों के दुःखवादी परंपरा से बताया है। जहाँ उपनिषद् की आनंदवादी परंपरा को इन्होंने मुख्य परंपरा बताया है। उन्होंने लिखा है, "वेदों, उपनिषदों और आगमों में यह रहस्यवादी आनंद साधना की परंपरा के ही उल्लेख करते हैं।"[11] उपनिषद् की आनंदवादी परंपरा को मुख्य बताते हुए भी प्रसाद दोनों ही परंपराओं को अलग-अलग नहीं देखते, बल्कि वह उनमें परस्पर एक अंतर्संबंध देखते हैं। प्रसाद लिखते हैं कि दुखवाद के स्रोत वेदों में ही विद्यमान हैं। प्रसाद कृष्ण का उदाहरण देते हुए लिखते हैं, "श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में आनंदवाद और दुखवाद के तत्व विद्यमान है अर्थात् उनमें प्रेम और विरह दोनों ही है।"[12] इस प्रकार प्रसाद जी भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के विभिन्न धाराओं की बात करते हुए भी अंततः सभी धाराओं को एक कर देते हैं अर्थात् वो एक ही धारा से निकल कर एकमेव होकर प्रवाहित होती हैं, ऐसा उनका मानना है।

ध्रुव शुक्ल परंपरा की दार्शनिक ढंग से व्याख्या करते हैं, "वह परम की परा है इसलिए परंपरा है- प्रकृति, जिसकी कक्षा में संयोगवश हम ही आ जाते हैं। पृथ्वी में गंध है, जल में रस है, अग्नि में तेज है, आकाश में शब्द है और रोम-रोम में सांस है। इन्द्रियाँ जिससे बनी हैं उसी की तरफ दौड़ती हैं, दौड़ने के लिए मन चाहिए। मन को समझाने के लिए बुद्धि चाहिए – बुद्धि को स्थापित करने के लिए अहं चाहिए- यह परंपरा सबको प्राप्त है और यहीं तक है- इसके आगे जो है वह प्रथा है, अहं के परे आत्मा को पाने की प्रथा। परंपरा दूसरी नहीं होती वह बदली भी नहीं जा सकती। प्रथाएँ बदली जा सकती हैं।"[13] इस प्रकार ध्रुव शुक्ल परंपरा की दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप से व्याख्या करते हैं। वे बताते हैं कि परंपरा शब्द किस धातु से बने है, सृष्टि के क्या-क्या अवयव हैं तथा उनका हमसे कैसा संबंध है, कैसे प्रकृति और मानव एक-दूसरे से क्रमबद्ध तरीके जुड़े हैं, साथ ही यह रागात्मक

संबंध कभी समाप्त नहीं हो सकता। अतःअपनी आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या में वे कहते हैं कि यही परंपरा है, इससे आगे जो है वह प्रथा है।

परंपरा और प्रतिमानों के सन्दर्भ में अपना मत रखते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, "इस प्रकार परंपरा का अर्थ है अतीत का अनुभव और परिवेश का अर्थ है वर्तमान का अनुभव तथा प्रतिभा है इन दोनों के ग्रहण, धारण, संशोधन और समन्वित अभिव्यक्ति की शक्ति। प्रतिभा नवीनता के प्रति आग्रहशील है और वह रचनाकार की स्वतंत्रता की कायल है। प्रतिभाशाली परंपरा को तोड़ता है, उसका पुनः सृजन करता है और उसे सँवारता भी है।"[14]

परंपरा के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय के इस मत का अर्थ है, परंपरा एक विकासशील प्रक्रिया है, जिसमें रचनाकार प्रगति और प्रयोग के माध्यम से परिवर्तन लाता है। उनका यह भी मानना है कि यदि किसी परंपरा में प्रयोग और प्रगति को प्रश्रय देने की शक्ति नहीं है तो वह परंपरा आत्मघाती है। अतः ऐसी परंपरा का जीवन काल लम्बे समय के लिए नहीं होता है। इसका अर्थ हुआ कि प्रतिभा और परंपरा एक-दूसरे के पूरक हैं।

मैनेजर पाण्डेय अपनी पुस्तक 'साहित्य और इतिहास दृष्टि' में लिखते हैं कि हजारी प्रसाद द्विवेदी की भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में परंपरा को लेकर यह मत है कि वह अखंड, विशुद्ध, अविभाज्य और एक नहीं है। उनका कहना है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य भी भारतीय समाज की तरह विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न साहित्यों की परंपरा के मिलने से बना है। मैनेजर पाण्डेय द्विवेदीजी के भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य की परंपरा के सन्दर्भ में उनकी दृष्टियों को रेखांकित करते हुए आगे लिखते हैं, "वे बार-बार गंगा नदी को याद करते हैं और संस्कृति, साहित्य, और परंपरा के विकासशील स्वरूप को समझने-समझाने के लिए चिंताधारा, प्राणधारा और जीवन प्रवाह जैसे पदों का प्रयोग करते हैं। द्विवेदी जी अतीत के ऐसे प्रेमी नहीं हैं कि उसकी कमजोरियों को पहचान न सकें।"[15] आगे, मैनेजर पाण्डेय द्विवेदी जी के इन्हीं मतों को और विस्तारपूर्वक बताते हैं

कि परंपरा के सन्दर्भ में वे उसकी व्याख्या अंध-श्रद्धा के साथ नहीं करते, तभी तो वे परंपरा को सनातन दृष्टि से नहीं देखते अर्थात् हर एक वस्तु और हर एक बात का मूल वेदों में नहीं तलाशते हैं। आगे वे लिखते हैं, "आए दिन श्रद्धापरायण आलोचक यूरोपीय मतवादों को धकिया देने के लिए भारतीय आचार्य विशेष का मत उद्धृत करते हैं और आत्मगौरव के उल्लास में घोषित कर देते हैं कि 'हमारे यहाँ' यह बात इस रूप में मानी या कही गई है। वे परंपरा और रूढ़ि में अन्तर करते हैं और रूढ़ि के वृथा मोह से मुक्त होने की सलाह देते हैं। द्विवेदी जी परंपरा को 'आधुनिक और वैज्ञानिक चित्त से देखने की सिफारिश करते हैं, 'पुराने' चित्त से नहीं।"[16]

निर्मल वर्मा ने आत्मबोध की परंपरा को भारतीय परंपरा कहा है। परंपरा के सन्दर्भ में निर्मल वर्मा का दृष्टिकोण देखें तो वे लिखते हैं, "हमने अपनी परंपरा का बोध अतीत से खोज कर नहीं बल्कि सहज जीवन-धारा के इन बिम्बों और प्रतीकों से ही प्राप्त किया था। पश्चिम की तरह हमने कभी सजग रूप से परंपरा में रहने के लिए अतीत का आहवान नहीं किया है। इसके विपरीत परंपरा हमारे भीतर मूक और अपरिभाषित रूप से जीवित रही थी। एक परंपरागत समाज को अतीत की दुहाई देने की जरुरत नहीं पड़ती। यह शायद विरोधाभास जान पड़े लेकिन सच यह है कि केवल पश्चिम का आधुनिक समाज ही अतीत के प्रतीकों पर जीवित रहता है जिसे वह इतिहास का नाम देता है, किन्तु जो समाज सहज रूप से परंपरागत होता है उसे अतीत की कोई आवश्यकता नहीं है।"[17]

कवि, कविता और परंपरा के संबंध में अज्ञेय अपने दर्शन के माध्यम से इसकी व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कवि की मुक्ति परंपरा से जुड़ कर रहने में है, जब वह उसमें कुछ नया जोड़ता है और उसमें परिवर्तन करता है तभी उसकी उसमें मुक्ति है। अतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य की परंपरा का निर्माण श्रेष्ठ रचनाओं और रचनाकारों से होता है। राजेंद्र यादव 'अज्ञेय' की मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित 'हंस' पत्रिका के संपादकीय में लिखते हैं, "वे नहीं होते तो हम भी नहीं होते, तो शायद उनके ध्यान में साहित्य की परंपरा के निर्माण की यही अवधारणा थी।"[18]

जगदीश शर्मा अपनी पुस्तक 'साहित्य की हैसियत' में परंपरा के सन्दर्भ में लिखते हैं, "परंपरा बनी बनाई नहीं मिलती, वह निरंतर बनने की प्रक्रिया में होती है। जैसा इस शब्द से प्रकट होता है, आगे और आगे बढ़ते रहने का नाम परंपरा है। इसलिए वह निरंतर परिवर्तनों के बीच से गुजरती है। आधुनिक काल को ही लें तो काव्य-परंपरा द्विवेदी युग तक थी, वह छायावाद के आगमन से बदल गई और उसके बाद के काव्यांदोलनों से निरंतर बदलती चली गई।"[19] जगदीश शर्मा का आशय यह है कि परंपरा परिवर्तनशील है। जिसमें एकरूपता नहीं होती। साहित्य के सन्दर्भ में श्रेष्ठ प्रतिभाएं परंपरा का अनुगमन नहीं करती है बल्कि अपनी प्रतिभा से उसे परिवर्तित कर देती है। उदाहरण स्वरूप आधुनिक काल के प्रारंभ होते ही विभिन्न गद्य विधाओं में लेखन प्रारंभ शुरू हुआ। जो उस समय एक नए ढंग का साहित्य लेखन था। उनके पास किसी भी प्रकार की परंपरा नहीं थी। न उनके पास शिल्प था न उनके पास साहित्यिक रूप था। बस उनके पास नया चिंतन और चिंताएँ थीं। आधुनिक साहित्यकारों ने उस वक़्त अपनी परंपरा से लिया भी तो वो था मिथकों, जीवन मूल्यों और आदर्श स्वरूप उनमें बसी अपनी मिट्टी की खुशबू। लेकिन कहते हैं कि किसी भी परंपरा की जड़ें गहरी हो तो उसका मोह आसानी से नहीं छूटता। जगदीश शर्मा इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "भारतेंदु युग में गद्य में जो नया उठाव आया वह काव्य में कुछ समय के लिए स्थगित रहा, क्योंकि हिंदी की काव्य परंपरा की जड़ें गहरी थी, लेकिन यह दुविधा अधिक दिनों तक बनी नहीं रह सकी। अंततः काव्य ने भी गद्य के समान नई दिशा ग्रहण की और उस क्षेत्र में भी वह परंपरा से दूर निकल गई।"[20] पुरानी परंपरा से दूर निकल कर एक नई दिशा में परंपरा आगे निकल जाती है। जिसका अर्थ यह होता कि वह एक विकासशील परंपरा है। साहित्य में वह एक विकास सूचक के समान होती है, जहाँ तक वह पहुँच चुकी होती है। परंपरा परिवर्तनों के अन्दर एक निरंतरता बनाएं रखती है। परंपरा का यह गुण है कि वह परिवर्तनों को अस्वीकार नहीं करती है। परंपरा में परिवर्तन निरंतर होता रहता है और वह बदले हुए रूप से जुड़ती चली जाती है, उसके जुड़ते रहने से उसकी एक पहचान बनती

रहती है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में एक मोड़ तब आता है जब एक परंपरा का अंत होता है और दूसरे का उदय होता है। इस प्रकार समय के चक्र पर परंपरा का स्वरूप बदलता जाता है।

हिंदी के प्रतिष्ठित आलोचक रामविलास शर्मा ने 1935 से 1947 तक के बारह वर्षों में लिखे हुए अपने निबंधों को संकलित किया, जिसका नाम दिया 'संस्कृति और साहित्य'। 1943 में उन्होंने एक निबंध लिखा था 'हिंदी साहित्य की परंपरा' जो कि इसी संग्रह का एक निबंध है। इसमें भारतीय राजनैतिक और साहित्यिक परंपरा की रूप-रेखा कैसी रही है ? कौन-कौन से उस समय के आलोचक-समालोचक रहे हैं ? साहित्य की इस बदलती हुई आधुनिक तथा नवीन परंपरा को लेकर उस समय के आलोचकों की क्या प्रतिक्रिया थी ? इस निबंध में उन्होंने इसका सार संक्षेप में उल्लेख किया है। रामविलास शर्मा लिखते हैं, "नये साहित्य और नयी समालोचना पर यह अभियोग लगाया जाता है कि वह पिछले साहित्य की परंपराओं में तटस्थ और उनके प्रति उदासीन हैं। पुरानी परंपरा का उल्लेख करने पर यह भी घोषित किया जाता है कि प्रगतिशील आलोचक तुलसीदास या भारतेंदु को जबरदस्ती प्रगतिशील बना रहे हैं। यह अत्यंत आवयश्क है कि हम अपने साहित्य की पुरानी परंपराओं से परिचित हों। परिचित होने के साथ-साथ हमें उनके श्रेष्ठ तत्वों को ग्रहण भी करना चाहिए। मेरा उन लोगों से मतभेद है जो साहित्य को समाज-हित या अहित से परे मानकर केवल रूप की प्रशंसा करके आलोचना की इति कर देते हैं। उनके लिए तुलसी और बिहारी दोनों ही समान रूप से वन्दनीय हैं और दोनों ही की परंपरा समान रूप से वांछनीय है।"[21] रामविलास शर्मा के इन संदर्भो से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने पुरानी और नवीन दोनों ही परंपराओं को महत्त्व दिया है। तभी तो वह पुरानी परंपराओं से श्रेष्ठ तत्त्वों को ग्रहण करने के लिए कहते हैं साथ ही तुलसी और बिहारी दोनों की परंपराओं में निहित श्रेष्ठ तत्त्वों के अर्थ को समझने और उनके अर्थ को ग्रहण करने की बात कहते हैं। जिससे समाज और साहित्य दोनों का ही विकास होता है। इस प्रकार रामविलास शर्मा पुरानी और आधुनिक परंपरा दोनों ही रूपों का महत्त्व स्थापित करते हैं।

नामवर सिंह परंपरा के सन्दर्भ में अपनी पुस्तक 'दूसरी परंपरा की खोज' में लिखते हैं, "दूसरी परंपरा की खोज द्विवेदीजी ने कबीर, सूर, बाणभट्ट और नए साहित्य में निराला, प्रेमचंद तथा दिनकर के माध्यम से की। इस परंपरा की सार्थकता इसके फक्कड़पन में है। यानी दूसरे शब्दों में यह फक्कड़पन की परंपरा ही भारतीय संस्कृति की वास्तविक क्रांतिकारी परंपरा है।"[22] इस प्रकार नामवर जी के अनुसार फक्कड़पन की परंपरा ही भारतीय संस्कृति की वास्तविक क्रांतिकारी परंपरा है, जिसमें कबीर, सूर, बाणभट्ट और नए साहित्य में निराला, प्रेमचंद तथा दिनकर आदि को उन्होंने बताया है। इस सन्दर्भ में हमें यह भी विचार करना होगा कि कबीर की क्रांतिकारी भावना, निराला की क्रांतिकारी भावना से किस बिंदु पर मिलती है ? वह कहाँ तक साहित्य की क्रांतिकारी भावना सिद्ध होती है ? इस सन्दर्भ में कबीर या निराला की क्रांतिकारी भावना फक्कड़पन के कारणों से अधिक सामाजिक असमानता और वर्ण-व्यवस्था के प्रतिरोध में है।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हर एक व्यक्ति के जन्म के साथ ही एक संश्लिष्ट कड़ी के रूप में उसके साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परंपरा जुड़ी होती है। जिसका आगे वह वाहक होता है। अतः कोई भी व्यक्ति अपने आप को परंपरा से अलग नहीं कर सकता। साहित्य, साहित्यकार और परंपरा के सन्दर्भ में यही कहना उचित होगा कि एक साहित्यकार की श्रेष्ठता इस बात में है कि उसे अपने परंपरा का गहरा बोध हो। जिससे वह अपने समकालीन समाज को ऐसी रचना दे सके जिसमें परंपरा का अंश भी हो और युगबोध भी हो। जिससे एक साहित्यकार श्रेष्ठ और सार्थक कृति की रचना कर सके।

1.2 परंपरा की पाश्चात्य अवधारणा-

ऑक्सफ़ोर्ड(Oxford) शब्दकोश में परंपरा के अर्थ की जो परिभाषा दी गई वह है, "a belief, custom or a way of doing something that has existed for a long time among a

particular group of people."[23] इसका अर्थ हिंदी में समझें तो, एक विश्वास, रिवाज या कुछ करने का एक तरीका जो लोगों के एक विशेष समूह के बीच लंबे समय से मौजूद है।

भारतीय विद्वानों की तरह ही विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों ने भी परंपरा की अवधारणा को व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। अतः उनकी भी परंपरा संबंधी परिभाषा जान लेना आवश्यक है। इस कड़ी में सर्वप्रथम टी.एस.इलियट की परंपरा संबंधी अवधारणा और परिभाषा पर दृष्टि डालें तो वे लिखते हैं, "परंपरा एक वृहत्तर प्रयोजन की वस्तु है।....इसमें, सर्वप्रथम इतिहासबोध समाहित रहता है और इतिहास-बोध के अंतर्गत एक दृष्टि अन्तर्निहित होती है, न केवल अतीत के अतीतत्व की अपितु उसकी वर्तमानता की भी।...यह इतिहास-बोध, जिसका तात्पर्य कालिक और कालातीत का पृथक-पृथक और समवेत रूप का बोध है, एक लेखक को पारंपरिक बनाता है और इसके द्वारा लेखक अपने युग में अपनी स्थिति के प्रति अत्यंत सजग होता है और अपनी समकालिकता (प्रासंगिकता) के बारे में चैतन्य।"[24] यहाँ इलियट की इस परिभाषा का अर्थ है कि परंपरा एक ऐसा माध्यम है जिसमें एक इतिहास समाहित होता है साथ ही जिसमें एक ऐसी दृष्टि होती जिसमें न केवल अतीत के प्रति उसकी आस्था रहती है, बल्कि वर्तमान के प्रति भी वह सजग और प्रतिबद्ध है। इलियट यह भी लिखते हैं कि जिस लेखक को परंपरा संबंधी इस धारणा का बोध होता है वही पारंपरिक है।

इलियट परंपरा, रचना और रचनाकार के सन्दर्भ में आगे लिखते हैं कि कोई भी कवि अपनी काव्य विशिष्टता अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों की परंपरा में रहकर ही सिद्ध कर सकता है तथा उसके काव्य की तुलना उसके पूर्ववर्ती मृत या जीवित रचनाकार की रचनाओं के साथ पक्ष या विपक्ष में रख कर ही की जा सकती है। इलियट कहते हैं, "कोई कवि, किसी कला, कोई कलाकार अपने आप में पूर्ण अर्थवत्ता नहीं रखता। उसका वैशिष्टिय, उसकी अनुशंसा मृत कवियों एवं कलाकारों के संबंध में ही की जा सकती है। आप उसका अकेले मूल्यांकन नहीं कर सकते, आपको उसे मृत कवियों (कलाकारों) के विरोध में या तुलना में रखना ही होगा। आगे वे कहते हैं कि एक विशिष्ट अर्थ में वह

इस बात के प्रति सचेत रहेगा कि उसे अपरिहार्य रूप से वर्तमान की कसौटी पर परखा जाएगा। इसका तात्पर्य यह है कि कोई रचनाकार अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों की परंपरा में रहकर ही अपना वैशिष्ट्य सिद्ध कर सकता है। इसके साथ ही परंपरा, इलियट के लिए न केवल ग्राह्य या वांछनीय है अपितु अनिवार्य शर्त है, एक कसौटी है।"[25]

साहित्य रचना के सन्दर्भ में परंपरा की बात करते हुए गेटे (युहान वोल्फगांग फान गेटे) ने कहा था कि परंपरा न केवल राष्ट्रीय भाषाई परिधि को पार कर साहित्य को सींचने में सफल रहती है बल्कि वह अंतर्राष्ट्रीय सीमा को पार कर अन्य विदेशी भाषाओं से भी साहित्य तत्व ग्रहण कर साहित्य परंपरा को समृद्ध करती है। आधुनिक भारतीय साहित्य परंपरा के सन्दर्भ में गेटे लिखते हैं, "आधुनिक काल में हिंदी-साहित्य ने जिस परंपरा की भूमि पर पदार्पण किया, वह रचना-दृष्टि के हिसाब से अभारतीय थी, लेकिन उसी से उसने जीवन-शक्ति ग्रहण की है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि परंपरा भाषिक इकाई के बाहर से ही नहीं, राष्ट्रीय इकाई के बाहर से भी किसी साहित्य को सींच सकती है। इसलिए जब साहित्य-रचना के सन्दर्भ में परंपरा की बात की जाए तो देशी-विदेशी, जातीय-विजातीय जैसी अवधारणाओं का परित्याग कर के चलना उचित होगा। विज्ञान के अविष्कारों के फलस्वरूप अब जब दुनिया छोटी हो गई है तो हमारी मानसिकता भी आज नहीं तो कल तो बदलनी ही है। कुछ दिनों बाद यह लग सकता है कि हमारी साहित्यिक परंपरा के सन्दर्भ में भाषिक परिधि की ही नहीं, राष्ट्रीय परिधि की चर्चा भी अप्रासंगिक है।"[26] गेटे ने आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व सार्वभौम साहित्य या विश्व साहित्य की परिकल्पना प्रस्तुत की थी।

राबर्ट रेडफील्ड ने परंपरा संबंधी अपनी अवधारणा के संबंध में लिखा है कि परंपराएं दो तरह की होती हैं, एक 'महान' और दूसरी 'लघु' परंपरा। रेडफील्ड ने भारत का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया और इस अध्ययन में उन्होंने जो अवधारणा प्रस्तुत किया वह है, "प्रत्येक सभ्यता के पास 'परंपराएं' होती हैं, एक अभिजन की या प्रकाशमान परंपरा जो कुछ लोगों के बीच अच्छी तरह

स्पष्टतया अभिव्यक्त की जा सकती है और दूसरी लोक परंपरा या किसानों की अव्याख्यायित परंपरा। पहली को उन्होंने 'महान' तथा दूसरी को 'लघु' परंपरा कहा।"[27]

समाजशास्त्री मिल्टन सिंगर राबर्ट रेडफील्ड के इस अध्ययन प्रणाली को स्वीकार करते हैं और इसी आधार पर उन्होंने भी भारत में सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन और विश्लेषण किया और जिस निष्कर्ष पर वे पहुचें वह इस प्रकार है, "(1)भारत की सभ्यता आदि या 'मूल' सभ्यता होने के कारण इसमें लोक या आंचलिक (क्षेत्रीय) सभ्यताएं पहले से अस्तित्व में नहीं थीं और यह कि यहाँ 'महान' परंपरा 'लघु' परंपरा के साथ निरंतर संयुक्त थी जो कि इसके विभिन्न क्षेत्रों, जातियों, जन-जातियों, गाँवों में मिलती हैं। (2) यह कि यह सांस्कृतिक निरंतरता एक सामान्य सांस्कृतिक चेतना का कारण और उत्पाद दोनों थीं, वह चेतना जो अधिकाँश भारतीयों द्वारा समान रूप से अनुभूत थी और जिनमें अनिवार्य समानताएं और मानसिक स्तर तथा नैतिक बोध सामान्य रूप से मिलते हैं। (3) यह कि यह सामान्य सांस्कृतिक चेतना भारत में निश्चित प्रक्रियों और कारणों के द्वारा निर्मित हो सकी थी वे हैं- पवित्र ग्रंथ, पवित्र उपादान (रामायण, महाभारत, गीता, वेद, पुराण, उपनिषद आदि) और एक विशेष शिक्षित वर्ग (ब्राह्मण) तथा अन्य कारक जो सांस्कृतिक संग्राम में सहायक होते हैं। (4) यह कि भारत जैसे आदि सभ्यता में अतीत के साथ सांस्कृतिक निरंतरता इतनी अक्षुण्य है कि 'आधुनिकीकरण' और 'प्रगति' की विचारधाराओं को स्वीकार करने के बावजूद इनको परंपरा में संक्रमित करके ही लिया जाता है।"[28] मिल्टन सिंगर के इस विश्लेषण का विभिन्न समाजशास्त्रियों ने आलोचना की है। इसी सन्दर्भ में प्रो. श्यामाचरण दुबे ने लिखा कि सांस्कृतिक परिवर्तन की व्याख्या 'महान' और 'लघु' परंपरा के ढाँचे में करना उपयुक्त नहीं होगा। प्रो.दुबे कहते हैं, भारत में परंपरा द्विआयामी नहीं बल्कि बहुआयामी हैं। वे लिखते हैं, "जहाँ तक 'लघु' और 'महान' परंपराओं का संबंध है, कोई ऐसी निश्चित परिभाषा नहीं हो सकती जहाँ एक से अधिक महान या महान जैसी परंपराएं हैं और सबके पास प्रामाणिक ग्रंथ और नैतिक नियम हैं, स्थिति भ्रामक हो जाती है...इसके साथ ही यह बात भी कही जा सकती है कि महान परंपरा और लघु परंपरा का यह ढांचा क्षेत्रीय,

पाश्चात्य और समन्वित राष्ट्रीय परंपराओं जिसमें प्रत्येक अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं की भूमिका के विषय में विचार करने का अवकाश ही नहीं देता।"[29]

समाजशास्त्री, साहित्यकार या चिन्तक सभी के लिए परंपरा की जो परिभाषा रही है वह कमोबेश एक जैसी ही रही है। किन्तु इसके बाद भी कुछ एक बिंदु पर इनके बीच परंपरा संबंधी अवधारणाओं को लेकर विभिन्नताएं देखी जा सकती है। इसी सन्दर्भ में एच. टी. विल्सन परंपरा और आधुनिकता की तुलना करते हुए लिखते हैं, "मैं तर्क करना चाहता हूँ कि आधुनिकता की तुलना में परंपरा की स्थिति निम्नतर हम मान सकते हैं और इसे अतीत के कूड़ेदान की चीज मान लेते हैं। एक 'पक्ष' की क्रियाशीलता के दोहरे रूप में विचार करते समय पाते हैं कि इसका (परंपरा का) विरोधी पक्ष जहाँ तर्कणा एवं बौद्धिकता से संबंधित है वहाँ परंपरा को महज अतर्कसंगत और भावुकता तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। इसी प्रकार का एक विचार यह प्रस्तुत किया जा सकता है परंपरा के बारे में जो अतीत से सन्दर्भवान होती है। यहाँ परंपरा को सामूहिक जीवन के पूर्व-आधुनिक रूप के समान बताया गया है (पूर्व-आधुनिक अर्थात् पूर्व-नागरिक, पूर्व-सेक्युलर, पूर्व पूंजीवाद, पूर्व औद्योगिक)"[30] इस प्रकार विल्सन आधुनिकता को ऐसा तत्व मानते हैं जो परंपरा के विरुद्ध है। किन्तु वो परंपरा को अतीत तक सीमित नहीं मानते, विल्सन आधुनिक समाज के मूल्यों के विपरीत मानते हैं। अतः इस अवधारणा का जो अर्थ निकलता है वह यह है कि आज का आधुनिक समाज सेक्युलर हैं, साथ ही यह समाज पूंजीवाद और औद्योगिक समाज भी है।

परंपरा संबंधी भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा को जाननें के बाद यदि परंपरा के अभिलक्षणों पर दृष्टि डाले तो परंपरा की अवधारण और अधिक स्पष्ट होगी।

1. परंपरा एक संकल्पना है यह कहना गलत नहीं होगा, जिसके कई आयाम हैं दूसरे शब्दों में यह बहुआयामी है, जो जिंदगी के कई पक्षों को स्पर्श करती है। परंपरा संस्कृति की पर्यायवाची नहीं है, किन्तु परंपरा कई संदर्भो में संस्कृति के मानक सन्दर्भ प्रतिरूप है।

2. परंपरा के महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण में से एक निरंतरता है। जो कि समय की कसौटी पर परीक्षित और प्रमाणित की जाती है। परंपरा समाज की आंतरिक प्रक्रिया, उसका मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन कर सत्यापित करती है।
3. परंपरा का एक क्षेत्र मानव के संवेदनाओं से जुड़ा होता है इसलिए इसका यह क्षेत्र संवेदनशील भी माना जाता है। जहां यह जुड़ी होती हैं, जातीय स्मृतियों से और सांस्कृतिक अस्मिता उनमें अभिव्यक्ति पाती है। इसीलिए कई बार परंपरा के इस पक्ष की अवमानना जातीय निंदा की द्योतक मानी जाती है।
4. परंपरा का एक और जो महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है, वह यह है कि परंपरा स्थिर और जड़ नहीं होती, उसमें एक गति होती है। इसके बावजूद कई बार परंपरा के कुछ पक्षों पर असहमति तथा प्रश्न उठाए जाते रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप परंपरा के विपक्ष में विरोध, असहमति तथा सुधार की मांग की जाती है। बौद्धिक और वैचारिक उठने वाले प्रश्न कई बार नये संप्रदाय, पंथ अथवा नये मत को जन्म देती है और धीरे-धीरे अपने विशिष्ट विचारधारा और छाप के कारण एक विशाल परंपरा का अंग बन जाती है। हिन्दू, इस्लाम, ईसाई और बौद्ध धर्म में अनेक शाखाएँ और उपशाखाएँ इसका जीवंत उदाहरण है। इन्हें स्वतंत्र परंपरा के रूप में भी और मुख्य परंपरा की शाखाओं के रूप में भी देखा जा सकता है।
5. परंपरा के अभिलक्षण के सन्दर्भ में दो पक्ष महत्त्वपूर्ण है। परंपरा का एक पक्ष जहाँ ऐतिहासिक और तथ्यात्मक है, वही इसका दूसरा पक्ष आस्था और विश्वास पर टिका है। परंपरा के दूसरे पक्ष की बात की जाए तो यह एक अत्यंत संवेदनशील पक्ष है, जिसमें जितनी रहस्यात्मकता बनाना चाहो उतनी भरी जा सकती है। भविष्य के मानव लक्ष्यों और उनकी आवयश्कताओं को ध्यान में रखते हुए इसे अरहस्यात्मक भी बनाना भी जरूरी है। इस दृष्टि से परंपरा की व्याख्या और उसकी परिभाषा सही-सही हो जो कि मानव कल्याणकारी हो। जिससे समाज को सुदृढ़ आधार प्राप्त हो और परंपरा की ऊर्जा का सकारात्मक उपयोग कर मानव अपने

समाज को एक ठोस आधार दे। परंपरा क्योंकि अतीत का बोझ नहीं, इसलिए जीवंत परंपरा समाज में निष्क्रियता और जड़ता नहीं आने देती। अतः परंपरा आज को और आने वाले कल को एक नई दृष्टि देती है, उसे दिशा देती है और अंततः मानव समाज ही अपनी परंपरा का वाहक होता है और उसका यह दायित्व है कि वह अपने समकालीन समाज में सही-सही परंपरा को परिभाषित करे।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म के साथ ही एक संश्लिष्ट कड़ी के रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संबंधों के अविरल धारा से निर्मित परंपरा का वाहक होता है। साथ ही कोई भी व्यक्ति अपनी परंपरा से अलग अस्तित्व नहीं बना सकता। लेखक के लिए यह आवयश्क है कि उसे ऐतिहासिक विकास का पूर्णतः ज्ञान हो। साहित्यकार के लिए भी यह आवश्यक है कि उसे जितना युगबोध हो, उतना ही अपनी परंपरा, संस्कृति और विरासत का भी गहरा बोध हो। तभी वह एक युगदृष्टा बन सकता है साथ ही श्रेष्ठ कृति की रचना कर सकता है। उसकी रचना ही कालजय कृति के रूप में सदैव समाज को पथ-प्रदर्शित करती रहेगी। अत: कभी भी परंपरा से कट कर श्रेष्ठ रचना का जन्म नहीं हो सकता।

परंपरागत स्थूल मान्यताएं, धार्मिक-रूढ़ियां, अंधविश्वास तथा अवैज्ञानिक धारणाओं के विरुद्ध उद्धरित सामाजिक चेतना को आधुनिकता कहना समीचीन होगा। आधुनिकता सदैव वर्तमान का मूल्य होता है जो आज के परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिकता, नैतिकता, मर्यादा, दर्शन और साहित्य की अर्थवत्ता परखती है। विचारदर्शन के क्षेत्र में आधुनिकता विकासशील मानव चिंतन और विचारों का एक पर्याय है। किन्तु आधुनिक मानवीय चिंतन मानवीय समुदाय के अतिरिक्त आज राष्ट्रों, शहरों, राजनैतिक व्यवस्थाओं, संस्थाओं, अर्थतंत्रों, आचरणों, भवनों एवं वस्त्रों को भी आधार बना कर आधुनिकता को परिभाषित किया जाता है। आधुनिकता के सन्दर्भ में गंगा प्रसाद विमल अपनी पुस्तक 'आधुनिकता: साहित्य के सन्दर्भ' में लिखतें हैं, "विशद स्तर पर कोई 'चीज' है जो 'आधुनिक' का वहन करती है और प्रकारांतर से सभी क्षितिजों को प्रभावित करती है। यही वह

सूत्र है जिसकी विवेचना से हम उस आधार तक पहुँच सकते हैं जो आधुनिकता की निर्मिती का कारण है। यद्यपि ठीक-ठीक किसी भौतिक स्थिति का अन्वेषण संभव नहीं है क्योंकि मूलतः एक प्रत्यय के पीछे कोई एक ठोस कारण नहीं होता अपितु कारणों की एक श्रृंखला होती है। तब भी आधुनिकता के सन्दर्भ में एक महत्तम कारण की खोज निरर्थक या काल्पनिक नहीं कही जा सकती। असल में आधुनिक विचार के सूत्र 'विकास' की धारणा में छिपे हैं जिसने मानव मस्तिष्क को सदा अनुप्रेरित किया है।"[31]

आधुनिकता का विचारगत आधार हम भौगोलिक सीमाओं में नहीं ढूढ़ सकते। अतः यह कहा जा सकता है कि यह किसी राष्ट्र, किसी देश या तकनीकी रूप से विकसित किसी समाज की एक वस्तु नहीं है। आधुनिकता ने समस्त मानवजीवन को सीमाओं से परे प्रभावित किया है। इस दृष्टि से आधुनिकता किसी भी व्यक्ति, समाज और समय काल के लिए एक जीवंत जीवनदृष्टि एवं जीवनबोध की खोज है। आधुनिकता संबंधी अवधारणा को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों का मत भी जान लेना आवश्यक है। इस संबंध में विभिन्न विद्वानों के मत दृष्टव्य है-

1.3 आधुनिकता की भारतीय अवधारणा-

हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली-"आधुनिकता का संबंध आधुनिकीकरण के फलस्वरूप पुरातन तथा परंपरागत विचारों एवं मूल्यों, धार्मिक विश्वासों और रूढ़िगत रीती-रिवाजों के विरुद्ध नवीन और वैज्ञानिक आविष्कारों, विचारों, नए मूल्यों आदि से है। 'आधुनिकीकरण' शब्द उन समस्त परिवर्तनों तथा प्रतिक्रियाओं के लिए प्रयोग किया जाता है जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत औद्योगिकरण तथा यंत्रीकरण के कारण प्रकट हुई हैं।"[32]

हिंदी साहित्य कोश भाग-1 पारिभाषिक शब्दावली- "सामान्य प्रयोगों में 'आधुनिक' शब्दों को बहुत दूर तक समय-सापेक्ष मान लिया जाता है, जैसा इतिहास का विभाजन प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक कालों में करते समय। परंतु यह 'आधुनिक' शब्द का सुविधा-निष्पन्न और लचीला

अर्थ है, जिसके अनुसार हर अगला काल अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा आधुनिक या अधिक आधुनिक होता है। पर अपने विशिष्ठ रूप में 'आधुनिक' का अर्थ इससे भिन्न है। आधुनिकता की पहली और अनिवार्य शर्त स्वचेतना है।

आर्थिक क्षेत्रों में भी इस स्वचेतना वृत्ति के उदाहरण मिलते हैं। अपने 'हार्ट इज हिस्ट्री' शीर्षक व्याख्यान क्रम में प्रसिद्ध इतिहासकार 'कार' ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि पिछले युगों के आर्थिक विकास में उन्मुक्त व्यापार का सिद्धांत प्रचलित था, पर आधुनिक युग में नियोजित अर्थ व्यवस्था को महत्त्व दिया जा रहा है। उन्मुक्त व्यापार प्रणाली और नियोजित अर्थ-व्यवस्था के बीच आधारभूत अंतर स्वचेतन वृत्तिका ही है।

सामाजिक शास्त्रों के बाहर विज्ञान ने स्वचेतन की स्थिति को तो उतना प्रतिफलित नहीं किया है, पर इतिहास के महत्त्व को अवश्य उसने स्वीकार किया है, विशेषतः नवविकसित चिंतन में। अपनी इस स्वचेतन वृत्ति के कारण आधुनिकता की प्रमुख चिंतन वर्तमान के लिए है, क्योंकि 'स्व' का सबसे गहरा बोध और संपर्क वर्तमान में होता है। वर्तमान की चिंता के माध्यम से ही आधुनिक व्यक्ति भविष्य को रूपायित करना चाहता है।"[33]

समाजशास्त्र विश्वकोश- बुद्धिवाद (रैशनलिज्म) और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने-समझने के एक ऐसे ढंग को आधुनिकता कहते हैं जिसमें प्रगति की आकांक्षा, विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढालने का भाव निहित होता है। तार्किक, अभिवृत्ति, परानुभूति, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि, सार्वभौमिक दृष्टिकोण इसके विशेष गुण हैं।"[34]

हिंदी साहित्य में भी आधुनिकता की अवधारणा को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित करने कर प्रयत्न किया है। हिंदी में आधुनिकता की शुरुआत को लेकर विभिन्न मत हैं। पश्चिमी चिंतन से प्रभावित विद्वानों का मत है कि हिंदी साहित्य में आधुनिकता की शुरुआत उन्नीसवी सदी के अंत में अर्थात् भारतेंदु काल से मानते हैं। वहीं कुछ विद्वानों का मत यह है कि आधुनिकता या आधुनिकतावाद की

शुरुआत प्रयोगवाद या नई कविता से है तो कुछ का मानना है कि आधुनिकता का संबंध द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उत्पन्न नवीन संवेदना और नई चिंतन दृष्टि से है। इस सन्दर्भ में बहुमत यह है कि भारतेंदु काल को हम आधुनिकता का प्रवेश द्वार कह सकते हैं और आधुनिकतावाद की शुरुआत हम द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जन्मी संवेदना और विचार दृष्टि को कह सकते हैं। इस आधार पर कुछ एक हिंदी साहित्यकारों की आधुनिकता संबंधी मत या परिभाषा जानना आवश्यक है, जो इस प्रकार है-

लक्ष्मीकांत वर्मा आधुनिकता को इन शब्दों में परिभाषित करते हैं, "आधुनिक होने का अर्थ ही है कि हम समूचे इतिहास की उपलब्धियों को, उसके अच्छे-बुरे तत्वों को मानव विकास-श्रृंखला और अनुभूति का एक जीवंत अंश मानते हैं। ऐतिहासिक दायित्व के प्रति जागरूकता आधुनिकता द्वारा ही संभव है। आधुनिक जीवन-दृष्टि मनुष्य के अतीत और वर्तमान के केंद्र को स्थापित करती है। मानव-नियति का साक्षात्कार आधुनिकता और आधुनिक दृष्टि की विशेषता है । संक्षेप में, लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार, आधुनिकता एक यथार्थवादी मानव-सापेक्ष जीवन-दृष्टि है, जो वैज्ञानिक है, विश्लेषण-परीक्षण उसकी विधि है, आत्म साक्षात्कार हेतु प्रयोग उसका माध्यम है तथा आधुनिकता द्वारा ही मानव-स्वाभिमान के औचित्य और समसामयिकता का निर्वाह संभव है। आधुनिकता अतीत की रूढ़ियों का त्याग कर वर्तमान और समसामयिकता को नये रूप में प्रस्तुत करती है।"[35] इस प्रकार लक्ष्मीकांत वर्मा आधुनिकता को इतिहास से जोड़कर देखते हैं और इतिहास के जीवंत तत्व को आधुनिकता का अंश मानते हैं। साथ ही आधुनिकता को मानव जीवन-दृष्टि मानते हैं जिसका आधार वैज्ञानिक हो, जिनमें पुरानी रूढ़ियों का त्याग कर नवीन जीवन दृष्टि को अपनाया गया हो।

आधुनिकता के संदर्भ में नगेन्द्र लिखते हैं, "वस्तुतः आधुनिकता की धारणा का मूल आधार ऐतिहासिक चेतना ही है। आधुनिक दृष्टि मध्ययुगीन और प्राचीन की अपेक्षा इसलिए भिन्न है कि इसमें इतिहास बोध की प्रधानता है अर्थात् वह अपने पर्यावरण के प्रति निश्चित ही सजग है।"[36] यहाँ

नगेन्द्र भी आधुनिकता के केंद्र में ऐतिहासिक चेतना को मुख्य आधार मानते हैं और जो इसके प्रति सजग है वह अपने समय के प्रति भी सजग है, उनकी यही आधुनिकता संबंधी धारणा है।

केदारनाथ अग्रवाल आधुनिकता की व्याख्या इन शब्दों में करते हैं, "आधुनिकता कालबद्ध चेतना है। उसका एक रूप विघटनात्मक और दूसरा संघटनात्मक होता है। जहाँ आधुनिकता जीवन के स्वीकृत मूल्यों पर प्रहार करती है, कुंठाओं को जन्म देती है। आधुनिकता का संघटनात्मक स्वरूप जीवन को संश्लिष्ट रूप प्रदान करता है। आधुनिकता के दूसरे रूप का प्रतिफल अदंभ शक्ति है। इस प्रकार, आधुनिकता अस्वीकृति और स्वीकृति, समस्या और समाधान दोनों है।"[37] केदारनाथ अग्रवाल की परिभाषा से जो अर्थ बोध होता वह है, आधुनिकता मूलतः एक विचार है जो किसी काल विशेष से जुड़ी होती है। साथ ही आधुनिकता का स्वरूप एक ओर संरचनात्मक है, वहीं दूसरी ओर विनाशकारी भी है। आधुनिकता जहाँ स्थापित मान्यताओं को तोड़ती है, जीवन को नई दिशा देने का कार्य करती है, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता विनाश की ओर भी लेकर जाता है।

डॉ.धर्मवीर भारती आधुनिकता की व्याख्या एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में करते हैं। वह लिखते हैं, "आधुनिक दृष्टि सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई है। आधुनिक युग में पूर्व और पश्चिम का विभाजन मिथ्या है। कारण यह है कि सम्पूर्ण विश्व में मनुष्य की नियति एक है। विज्ञान ने पश्चिम एवं पूर्व की जीवन-पद्धतियों को समान रूप से प्रभावित किया है। मानव द्वारा विकसित आधुनिक विज्ञान दोनों की नियति एक सी बताता है, जहाँ आधुनिकता का बोध संकट के बोध से जुड़ा हुआ है। आधुनिकता के प्रति आज का युग सजग है, किन्तु उनका कहना है कि आधुनिकता की सार्थकता आधुनिक मूल्य की खोज और उसके निर्माण में निहित है। अतः डॉ.धर्मवीर भारती का मानना है कि आज का युग अपने आधुनिक होने में कहीं अधिक सजग है तथा वर्तमान के प्रति अधिक सतर्क और जागरूक है।"[38] डॉ.धर्मवीर भारती की आधुनिकता संबंधी दृष्टि सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई है, जहाँ वे आधुनिकता के सन्दर्भ में सीमाओं के विभाजन को मिथ्या मानते हैं और मानव को लेकर व्यापक रूप में विश्लेषण और विवेचन करते हैं। उनकी स्थापनाएं निम्नलिखित हैं,

1. "आधुनिक बोध चिंतन प्रधान अधिक है, कर्मप्रधान कम अर्थात् उसमे वह आतंरिक स्फूर्ति नहीं है जो कर्म की प्रेरक प्रवृत्ति होती है।
2. वह शुद्ध कला बोध से संबद्ध है, अस्तु उसका कथ्य क्षीण है, उसमें शैली प्रधान है।
3. रचना के धरातल पर, आधुनिक बोध, किसी सीमा तक वैज्ञानिक प्रणाली (आवेशहीनता और मितव्ययिता, जिसके ख़ास लक्षण हैं) से प्रभावित है।
4. वह महानगरों की सभ्यता से अधिक संबद्ध है और अंत में जिसे आधुनिक बोध कहा जाता है, वह कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। मूल्यों के विघटन से उत्पन्न वह एक दृष्टि है, जिसमें घबराहट, निराशा, शंका, त्रास और असुरक्षा के भाव हैं।"[39]

उपर्युक्त बिन्दुओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि डॉ.धर्मवीर भारती आधुनिकता को कई संदर्भों में परिभाषित करते हैं। जहाँ आधुनिकता का संबंध चिंतन से अर्थात् विचारों से अधिक और कर्म अर्थात् व्यवहार से कम मानते हैं। इसके अलावा आज के समय में वे मानते हैं कि आधुनिकता का संबंध महानगरीय सभ्यता से है। आज का आधुनिक जीवन अन्दर से खोखला है बेचैन, निराशा से भरा हुआ है और जहाँ असुरक्षा की भावना सभी के अन्दर व्याप्त है।

ऐतिहासिक चेतना के सन्दर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने आधुनिक और आधुनिकता को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है, "आधुनिकता इतिहास की सजग और स्वचेतन प्रतीति है। इतिहास-चक्र को द्रुततर करने का संकल्प ही आधुनिकता है। स्वचेतना का घनिष्ठ संबंध वर्तमान से होता है। वर्तमान की उपेक्षा संभव नहीं है। यह बोध ही आधुनिकता को रोमांटिसिज्म से अलग कर पाता है। प्रजातांत्रिक विचार से उपजे आधुनिक जीवन-दृष्टि सम्पूर्ण समाज और मानव-नियति से संबद्ध है। आधुनिक दृष्टि बौद्धिक है, उसमें स्वतंत्र चिंतन और विश्लेषण का आग्रह होता है।"[40]

मनुष्य की जीवन शैली, युग सन्दर्भ और मूल्यों का गहरा संबंध होता है। जीवन पद्धति के अंतर्गत मूल्यों का विकास होता है। इसी दृष्टि से नित्यानंद तिवारी ने आधुनिकता की व्याख्या की है। उनके

शब्दों में, "आधुनिकता सबसे पहले एक जीवन पद्धति है, जिसका विकास इतिहास की विभिन्न शक्तियों के दवाब के कारण हुआ है। आधुनिक होने का अर्थ समयहीन होना नहीं है क्योंकि इतिहास की अनेक शक्तियों के दवाब के कारण एक प्रक्रिया की निश्चित परिणति के फलस्वरूप जीवन पद्धति भी युग-सन्दर्भ के बीच ही महत्त्व पाती है और इसीलिए आधुनिकता युग सन्दर्भ से कटकर 'समयहीनता' की भावना नहीं हो सकती।"[41] नित्यानंद तिवारी आधुनिकता का संबंध इतिहास और जीवन पद्धति से जोड़कर बताते हैं। उनके अनुसार समय और युग पर ख़ास शक्तियों का दवाब होता है। यह दवाब सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि किसी भी प्रकार का हो सकता है, जिससे इनमें बदलाव आने लगते हैं और धीरे-धीरे वे जीवन-पद्धति का रूप ग्रहण कर लेती हैं और फिर हम इस परिवर्तित रूप को आधुनिकता के रूप में परिभाषित करते हैं।

जगदीश गुप्त आधुनिकता और अतीत के बीच एक गहरा संबंध मानते हैं वह लिखते हैं, "आधुनिकता के मूल में मानवतावादी विचारधारा निहित है। आधुनिकता की अतीत निरपेक्ष व्याख्या मनुष्य के लिए मंगलदायक सिद्ध नहीं हो सकती। जीवन को दायित्वपूर्ण सार्थकता अर्थ प्रदान करने के लिए विवेकसम्मत आधुनिक दृष्टि का होना नितांत संगत एवं अपेक्षित है।"[42]

दूधनाथ सिंह आधुनिकता के सन्दर्भ में लिखतें हैं, "आधुनिकता युग सन्दर्भ की भावना नहीं है। आधुनिकता होने का मतलब आज का, इस दशक का, इस शताब्दी का होना नहीं, असल में आधुनिक होना शाश्वत होना है।"[43]

आधुनिकता की व्याख्या करते हुए कमलेश्वर लिखते हैं, "आधुनिकता एक ऐसी मानसिक-बौद्धिक स्थिति है जो अपने परिवेश और समाज की गहनतम समस्याओं से उद्भूत होती है और समकालीन जीवन को संस्कार देती है। मानव मूल्यों में सर्वव्यापी और सार्वजनिक होते हुए भी आधुनिकता का स्वरूप अपनी जातीय विशेषताओं से अलग नहीं होता। जातीय संस्कारों के रहते हुए भी इसमें इतनी उदारता है कि वह विजातीय गुणों को अपने में समाहित करने की शक्ति रखती है।"[44]

इस प्रकार विभिन्न भारतीय विद्वानों ने आधुनिकता संबंधी अवधारणा को अपने ज्ञान के आधार पर समय-समय पर परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। अंततः इन विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर यह अर्थ-बोध होता है कि समय अपनी धुरी पर घूमता हुआ परिवर्तित होता रहता है, वक्त के इसी परिवर्तन के साथ सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और मानवीय चिंतन एवं चिंता भी बदलती रहती है। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में जो जागरणभाव या आधुनिक भाव समाज केन्द्रित हुआ उसका कारण औद्योगिक विकास है। इस औद्योगिक विकास ने मानव को अपनी सुख-सुविधाओं हेतु भविष्य के स्वर्ग-निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया। 19वीं शताब्दी के समय-काल में यह वृत्ति न केवल नई प्रवृत्ति थी, बल्कि एक नवीन समाज और दुनिया निर्मित करने की कामना और आवेश से भरी हुई थी। 19वीं शताब्दी इस मायने में महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जिसे हम 'आधुनिकतावाद' कहते हैं अर्थात् आधुनिकता की 'क्लासिकल पीढ़ी' कहते हैं, मूलतः महत्वपूर्ण विचार साबित होता है। इसने न सिर्फ समाज को भविष्य में प्रजातंत्र की लोकोन्मुखी व्यवस्था का स्वप्न दिखाया बल्कि जनवादी सर्वहारा व्यवस्थाओं के मध्य में वैज्ञानिक विचार को भी जन्म दिया और उन्नीसवीं शताब्दी के संकल्प को बीसवीं शताब्दी की लोकतांत्रिक, समाजवादी क्रांतियों ने उससे मूल संकल्प ग्रहण किया।

आधुनिकता संबंधी भारतीय अवधारणा समझने के पश्चात् पाश्चात्य विद्वानों का मत भी जान लेना आवश्यक है। आधुनिकता के सन्दर्भ में पश्चिम में भारत से पूर्व इसकी शुरुआत मानी जाती है। आज जिस जीवन-पद्धति को हम अपनाते जा रहे हैं, वह भी पश्चिम का ही अनुकरण कर रहे हैं। आज आधुनिकता के जो पैमाने तय किये जा रहे हैं, वह यह है कि जो राष्ट्र जितना विकसित है उसे उतना ही आधुनिक माना जा रहा है। इन सन्दर्भों में भी हम पश्चिमी राष्ट्रों को लक्षित करके चल रहे है। विज्ञान के रास्ते भी हम जिस आधुनिकता को हासिल करने का प्रयत्न कर रहे हैं वहाँ भी हम उनसे सीख रहे हैं उनका अनुकरण कर रहे हैं। अतःआधुनिकता संबंधी उनकी अवधारणा को जाने बिना आधुनिकता की सार्वभौमिक अवधारणा को नहीं जाना जा सकता है।

1.4 आधुनिकता की पाश्चात्य अवधारणा-

वेक्टर के शब्दकोश के अनुसार आधुनिक (मॉडर्न) का अर्थ है, "कला क्षेत्र में एक आन्दोलन या शैली विशेष, जिसका लक्षण है- परंपरागत शास्त्रीय रूपों और अभिव्यक्ति- प्रणाली से विच्छेद अथवा प्रयोग, निर्भीकता, मौलिकता पर बल और आधुनिक विषयों पर विचार करने का प्रयास।

'आधुनिकता' शब्द के उपर्युक्त अर्थ में निम्नलिखित प्रवत्तियों का संकेत मिलता है-

1. परम्परागत मूल्यों से विच्छेद की भावना (जिसका परिणाम है)
2. अभिव्यक्ति-प्रणाली की नवीनता।
3. रचना के क्षेत्र में मौलिकता।
4. काव्य या साहित्य में नये विषयों का समावेश।
5. प्रयोग-माध्यम और विषय के क्षेत्र में।"[45]

वेक्टर ने इन पांच बिन्दुओं के माध्यम से आधुनिकता के महत्त्वपूर्ण आवश्यक तत्त्वों की चर्चा की है। जिनमें उनका मानना है कि आधुनिकता के लिए यह आवश्यक है कि वह पुरानी अनावश्यक मूल्यहीन परंपरा जो जीवंत न हो उसे त्याग दे। अभिव्यक्ति चेतना में समय-सापेक्ष नवीनता होनी चाहिए। साथ ही समकालीन समाज में मौलिक रचनाकर्म हो, जिसमें काव्य और साहित्य में नये विषयों को स्थान मिले।

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ दी सोशल साइन्सेज' के अनुसार, आधुनिकता के लक्षण और विशेषताएं इस प्रकार हैं, "आधुनिकता वह मनोवृत्ति है, जो परंपरागत (मूल्यों) को नूतन की तुलना में गौण सिद्ध करती है और प्रतिष्ठित, प्रचलित (मान्यताओं) तथा अभिनव और नवीन प्रक्रिया की अपेक्षाओं में समन्वय स्थापित करती है। व्यावहारिक रूप में इस प्रवृत्ति के दो परिणाम हो सकते हैं- रुढ़िवादी और क्रांतिकारी। इसका रूढ़िवादी परिणाम वहाँ दृष्टिगोचर होगा, जहाँ नूतन की तुलना में परंपरागत की उपेक्षा उसे (परंपरागत को) अप्रचलित होने या परस्पर संघर्ष होने के कारण नष्ट होने से बचाती

है। इस मनोवृति का क्रांतिकारी परिणाम, वहाँ दृष्टिगोचर होगा, जहां परंपरागत को अनुपयोगी सिद्ध करके, उसे सर्वथा व्यर्थ प्रमाणित कर दिया जाए। आधुनिकता का रुढ़िवादी प्रकार विभिन्न धर्मों के क्षेत्र में देखा जा सकता है, आधुनिकता का क्रांतिकारी रूप कला-जगत में देखा जा सकता है।"[46] 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ दी सोशल साइन्सेज' के अनुसार आधुनिकता के दो स्वरूप हैं- रूढ़िवादी और क्रांतिकारी। क्रांतिकारी स्वरूप नवीन प्रक्रियाओं, चिन्तनों एवं कला जगत में दिखता है। वहीं आधुनिकता का रूढ़िवादी रूप हम विभिन्न धर्मों में देख सकते हैं।

जी.एस.फ्रेजर आधुनिकता की विवेचना रचना, साहित्य और समाज को केंद्र में रखकर करते हैं। इस सन्दर्भ में वह लिखते हैं, "किसी भी आधुनिक रचना में कुछ मूलभूत आंतरिक विशेषताएँ होती हैं। अतः किसी रचना को आधुनिक कहने का मतलब है- उसकी मूलभूत आतंरिक विशेषताओं की ओर संकेत करना। साहित्य में आधुनिकता का लक्षण है- अतीत में कल्पना-प्रवण अभिरुचि। आधुनिक साहित्य का मूल- अंग्रेज़ी रोमांटिक आन्दोलन में ढूंढा जा सकता है, कारण यह कि उक्त आन्दोलन का एक पक्ष अतीत के प्रति श्रद्धा-भाव से जुड़ा था। विगत का सही दिशा में किया गया अध्ययन मानव-व्यक्तित्व को एक नयी दिशा प्रदान कर सकता है। फ्रांस की क्रान्ति ने यह प्रमाणित कर दिया कि मनुष्य इतिहास की शक्तियों से नियंत्रित होता है, न कि वह इन शक्तियों को नियंत्रित कर पाता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से अपने को जोड़कर, मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास और विस्तार कर सकता है।"[47] जी.एस.फ्रेजर की आधुनिकता संबंधी दृष्टि ऐतिहासिकता और परंपरा से संबंधित है उनका मानना है, जब किसी रचना को आधुनिक कहा जाए तो उसका अर्थ उसकी आंतरिक विशेषताओं से हो अर्थात् उस रचना में वह शक्ति हो जिससे मानव जाति का विकास हो, मनुष्य के व्यक्तित्व को एक दिशा मिल सके और यह तब संभव है जब उस रचना में अतीत का गहरा बोध हो। वह लिखते हैं, जैसे अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिक आन्दोलन का उद्देश्य था, जिसमें अतीत के प्रति उन रचनाओं में श्रद्धा-भाव निहित था ।

मैक्स वेबर 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज़्म' में आधुनिकता को इन शब्दों में व्याख्यायित किया है, "आधुनिकता व्यक्ति एवं समाज के सदा से चले आ रहे स्वरूप को मिलने वाली स्पष्ट स्वीकृति है। आधुनिकता अतीत में की गई अस्मिता की संरचनाओं की श्रृंखला में मात्र अगली कड़ी नहीं है, बल्कि यह इन संरचनाओं के मूल में उपस्थित कारणों पर से पर्दा उठाने की प्रक्रिया है।"[48] इस परिभाषा का अर्थ हुआ कि हर एक काल में व्यक्ति और समाज का एक अपना विकासशील स्वरूप होता है और इस स्वरूप को जो स्वीकृति अर्थात् एक पहचान मिलती है वह आधुनिकता कहलाती है या इस प्रक्रिया को हम आधुनिकता कह सकते हैं।

एडोर्नो और होखाईमर अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'डायलेक्टिक ऑफ़ इनलाइटमेंट' में लिखते हैं, "आधुनिकता के साथ आई कथित तार्किकता ने मनुष्यों को अभी उनके मिथकीय अतीत से मुक्त नहीं किया है। प्राकृतिक दुनिया पर मनुष्य का वर्चस्व धीरे-धीरे उसे सामाजिक दुनिया से नियंत्रण की ओर ले गया है। 'प्रगति' की अवधारणा एक प्रकार की पाश्विकता में बदल गई है। फासीवाद के उदय की परिस्थितियों में एडोर्नो ने संस्कृति के इसी आततायी रूप को टेक्नोलॉजी और पूंजी के विकास से जोड़कर देखा था।"[49] आधुनिकता ने मनुष्य को और अधिक तर्कसम्मत बना दिया, किन्तु उसे मिथकीय अतीत से मुक्त नहीं किया। इसी प्रक्रिया में अपने सामाजिक क्षेत्रफल को विज्ञान की मदद से बढ़ाने लगा, विज्ञान ने एक ओर मनुष्य और उसके सामाजिक जीवन को आधुनिक जीवन दृष्टि प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर विज्ञान और आधुनिक मानव की लालसाओं ने मानव को मानव से पशु बना दिया। एडोर्नो ने फासीवाद के उदय के पीछे इसी आधुनिक विज्ञान और उसके स्वरूप को बताया है।

स्टीफन स्पेंडर, "However, in literature, with which I am here mostly concerned, it is this which today still challenges the reaction against the modern movement. I consider that early in this century and perhaps up to the 1930's the best work of the modern expressed this tension between past and present, which could

only be expressed in a revolutionary kind of art, what Joyce, Eliot, Lawrence, Pound, Yeats, Virginia are today sometimes dismissed as experimental."[50]

एम.रोजर- "modernization is the process by which individuals change from traditional way of life to a more complex, technologically advanced and rapidly changing style of life.[51]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इन विद्वानों ने आधुनिकता के विभिन्न स्वरूपों को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। इन परिभाषाओं को संक्षिप्त में समझने का प्रयत्न करें तो आधुनिकता एक ऐसी अवधारणा है जो सकारात्मक और विधेयात्मक है। आधुनिकता अपना आधार इतिहास, परंपरा, परिवेश, व्यक्ति, समाज और काव्य चेतना के संश्लिष्ट रूप से पाता है। साथ ही आधुनिकता का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही परम्परगत और नवीन दोनों ही मान्यताओं और विचारधाराओं पर निरीक्षण और परीक्षण करने की एक दृष्टि देता है, स्वतंत्रता देता है। जिन मूल्यों की स्थापना से मानव समाज का हित हो, उन मूल्यों को हम आधुनिक कहेंगे। आधुनिकता समय के साथ मानव के कल्याण हेतु अपने मूल्यों में भी परिवर्तन लाती रहती है और परंपरा की सबसे नवीन कड़ी आधुनिकता ही है ऐसा कहना गलत नहीं होगा।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की स्थापित अवधारणाओं को जान एवं समझ लेने के बाद आधुनिकता का संबंध हिंदी साहित्य से कैसा रहा है, यह भी जानना आवश्यक है। परंपरा से आधुनिकता का क्या संबंध है ? इसके अतिरिक्त आधुनिकता के संबंध में स्वतंत्रता का क्या अर्थ है? अतः इन सभी बिन्दुओं को केंद्र में रखकर हम आधुनिकता की अवधारणा को और अधिक बेहतर दृष्टि से समझ सकते हैं।

स्वतंत्रता, आधुनिकता का एक ऐसा विस्तार है जिसे आधुनिकता के प्रमुख तत्वों के रूप में माना गया है। स्वतंत्रता का स्वरूप भिन्न-भिन्न काल में अलग रहा है। उदाहरण स्वरूप मध्यकाल में

स्वतंत्रता के अलग मायने थे। मध्यकाल में सामाजिक स्वतंत्रता का अर्थ एक समान नहीं था। इस काल में उच्चकुलीन लोगों के लिए भौतिक सुखों की स्वतंत्रता थी, वही स्वतंत्रता का कामगारों या किसानों के लिए कोई विशेष अर्थ नहीं था। उच्चकुलीन लोगों के लिए जुआ खेलना, परस्त्रीगमन की स्वतंत्रता तथा विलासी जीवन की पूर्णतः स्वतंत्रता थी। धार्मिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता भी राजसत्ता द्वारा नियंत्रित नियमानुसार ही थी। आम वर्गों के लोगों के लिए यह आध्यात्मिक चिंतन और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मनसा रूप में ही रह गई थी। अतः मध्यकाल में अपने आराध्य का भौतिक रूप से धार्मिक अनुष्ठान वही कर सकता था जिसे उच्चकुलीन समाज ने उसका अधिकार दे रखा हो। शेष जनता की स्वतंत्रता एकांत भाव से खुद को अपने आराध्य को समर्पित कर देने में ही थी। किन्तु यह परतंत्र मनोवृत्ति आज रूढ़ हो चुकी है। अतः आधुनिकता का आविर्भाव भी वहीं होगा जहाँ भौतिक स्वतंत्रता के समान अधिकार के साथ-साथ चिंतन और अभिव्यक्ति का अधिकार भी समाज में समान रूप से होगा। गंगा प्रसाद विमल स्वतंत्रता और आधुनिकता के सन्दर्भ में अपनी पुस्तक 'आधुनिकता : साहित्य के सन्दर्भ में' में लिखते हैं, "स्वतंत्रता वस्तुतः एक मानवीय चेतना है जो आत्मचेतना से उदित होकर सार्वजनिक स्वतंत्रता के फलक तक विस्तृत हुई है। यदि हम यह स्वीकार करें कि आधुनिकता का मूल तत्व एक प्रकार की आत्मचेतना है तो स्वतंत्रता के प्रश्न आधुनिकता से, अपरिहार्य रूप से संबद्ध मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"[52]

फ़्रांस की राज्य क्रान्ति ने स्वतंत्रता का जयघोष कर समानता और बंधुत्व को स्थापित करने का प्रयास किया, साथ ही सामन्ती व्यवस्था के खिलाफ एक जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना की थी। मानव उत्थान की लोकतांत्रिक विचारधारा ही, जिसका उदय पूंजीवाद के के साथ-साथ उदय हुआ, आधुनिक-काल को मध्यकाल से पृथक करती है। किन्तु जिस सामंती व्यवस्था को तोड़कर पूंजीवाद ने इतिहास में प्रगतिशील भूमिका अदा की, आगे चलकर यही पूंजीवाद प्रगतिशील शक्तियों के विकास मार्ग में बाधा बनकर खड़ा हो गया। साथ ही वक्त के साथ शीघ्र ही यह ज्ञात हुआ कि जिस बुर्जुआ क्रान्ति ने समानता और बंधुत्व का जयघोष कर पूंजीवाद को जन्म दिया वही पूंजीवाद मानव

जाति के शोषण की एक नई व्यवस्था है। नई व्यवस्था के रूप में पूंजीवादी राष्ट्रों ने अपने साम्राज्य विस्तार के लिए दो महायुद्धों को जन्म दिया। जिसका परिणाम था नरसंहार और मानव मूल्यों का विघटन। उस वक्त पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध दो विचारधाराओं ने जन्म ले लिया था जिसे हम मार्क्सवादी और लेनिनवादी के रूप में जानते हैं, जो इन पूंजीवादी शक्तियों के समक्ष एक ठोस वास्तविकता बनकर उन्हें चुनौती पेश कर रही थी। जीवन, कला और साहित्य में आधुनिकता और आधुनितावादी प्रवृत्तियों का जन्म इसी पृष्ठभूमि में होता है।

आधुनिकता के उदय के साथ पुरानी सामंती व्यवस्था टूटी, सांस्कृतिक प्रारूप बदले, मनुष्य की आस्था का केंद्र परलोक से इहलोक होने लगा। आधुनिक काल में ज्ञान-विज्ञान के जरिये और औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप आधुनिक मानव की चेतना जागृत हुई। यही चेतना मानव को मध्यकालीन सामंती व्यवस्था एवं मध्यकाल में ईश्वर की अभ्यर्थना को आवश्यक आचरण समझे जाने वाली मानसिकता से मुक्ति दिलाती है। मध्यकाल में भक्ति के इसी आधार पर मानव से मानव को पृथक समझा जाता था। जबकि विज्ञान ने मानव को आधुनिक काल में सामाजिकता के नए अनुशासन से परिचय कराया है। इसके अलावा आधुनिक चिंतन और विज्ञान ने मानव को यह भरोसा दिलाया कि उसमें खुद के भाग्य को बदलने की क्षमता है, वह स्वयं का भाग्य विधाता है।

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल की शुरुआत 19वीं शती के उत्तरार्द्ध और 20वीं सदी के प्रांरम्भ के राष्ट्रीय नवजागरण से हुई थी। जब भारत की जनता सामंती, पूंजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के विरुद्ध उठ खड़ी हुई और हिंदी साहित्यकारों ने अपनी साहित्य लेखनी का केंद्रीय विषय मुक्ति की सार्वजनिक या व्यक्तिगत कामना को बनाया। आधुनिकता के संचरण को हम हिंदी साहित्य में देखें तो हमारे सामने दो दौर आते हैं, पहला स्वतंत्रता से पूर्व का साहित्य और एक स्वातंत्र्योत्तर साहित्य। स्वतंत्रता आंदोलनों के दौरान जो साहित्य रचना की गई उसे तात्कालिक मानदंडो के आधार पर प्रगतिशील कहा गया है, क्योंकि उस समय साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना का प्रसार तात्कालिक लक्ष्य था। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के बाद हमें हिंदी साहित्य में

आधुनिकता बोध देखने को मिलता है। तत्कालीन देशप्रेम का प्रतीकात्मक गीत 'वन्देमातरम्' 1906 में 'सरस्वती' पत्रिका में छपता है। जिसके पश्चात् 'सरस्वती' पत्रिका ने साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लगातार आलोचना करना प्रारंभ कर दिया। 'कविवचन सुधा' में भारतेंदु ने जनवादी भावनाओं को स्थान दिया। उनकी रचनाओं और विभिन्न वक्तव्यों से यह बोध होता है कि वह समाज के पुराने ढाँचे के स्थान पर एक नए समाज की कल्पना करते हैं। साम्राजवादी शक्तियों के विरुद्ध अपने साहित्य लेखन से वह निरंतर संघर्षरत रहे। 18 मई 1874 को 'कविवचन सुधा' में वह एक स्थान पर अंग्रेजों के सन्दर्भ में लिखते हैं, "जब अंग्रेज विलायत से आते हैं, प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिन्दुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तो कुबेर बन जाते हैं- इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुश्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।"[53]

इस प्रकार अपने साहित्यिक पत्र-पत्रिका लेखन के माध्यम से साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध 'सरस्वती पत्रिका', 'कविवचन सुधा' तथा कई अन्य तत्कालीन पत्रिकाओं ने देश की साम्राज्यवादी सत्ता का निरंतर विरोध किया। साथ ही इसमें कोई शक नहीं कि साथ-साथ उस समय के समकालीन हिंदी के साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य और समाज को अपनी रचना धर्मिता से एक से बढ़कर एक साहित्यिक अनमोल निधि दी। साथ ही सच्चे जनवादी साहित्य की नींव डालने वालों में वे अग्रणीय थे।

इनसे आगे जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद साहित्य और उनकी रचनाओं में आधुनिक जीवन के प्रति आस्था और मुक्ति संघर्ष की पड़ताल करें तो दोनों ही चिन्तकों में हम पाएँगे कि वे अलग-अलग चिंतनधारा के प्रवर्तक थे। जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में पुनरुत्थानवाद के साथ-साथ नवनिर्माण के बीज तत्व भी मौजूद थे। इसे ऐसे समझा जा सकता है कि प्रसाद की 'कामायनी' को यदि 'यूटोपिया' समझा जाए तो उसे प्लेटो के 'रिपब्लिक' और टामस मूर के यूटोपिया के समकक्ष समझा जा सकता है। समाज में व्याप्त अव्यवस्था तथा विषमता के आधार पर ही कोई साहित्यकार

'यूटोपिया' की कल्पना कर सकता है। इस दृष्टि से प्रसाद भी एक आधुनिक क्रांतिकारी दृष्टि के साहित्यकार ठहरते हैं।

भारतीय जनमानस स्वतंत्रता से पूर्व न केवल दासता से मुक्ति की कामना करते थे बल्कि आर्थिक आजादी की अपेक्षा भी रखते थे। देश की बाहुल्य जनता इस आर्थिक दासता की गिरफ्त में थी और उस समय बहुत कम रचनाकारों और रचनाओं ने गांधीवादी समय की इन विसंगतियों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करवाया। प्रेमचंद और उनके जैसे कुछेक रचनाकारों ने सामाजिक और आर्थिक मुक्ति को अपनी रचनाओं का केंद्रीय विषय बनाया। प्रेमचंद ने आर्थिक विषमता, भूख-गरीबी, किसान और लगान उसका भूमि स्वामित्व आदि विषयों को अपने उपन्यासों के माध्यम से एक आवाज दी। प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र होरी, गोबर, धनिया आदि न केवल भारत बल्कि विश्व के सभी पीड़ितजनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। विश्व में जहाँ-जहाँ पूंजीवादी शक्तियों द्वारा कोई शोषित है, वहाँ-वहाँ प्रेमचंद के ये पात्र सार्थक हैं। इस प्रकार जिस साहित्य में मानव मुक्ति की कामना हो, वही साहित्य आधुनिक कहा जा सकता है और वही रचनाकार प्रगतिशील साहित्यकार।

स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों पश्चात् भी आधुनिकता की खोज की अलग-अलग दो धाराएँ प्रेमचंदोत्तर साहित्यधारा में सक्रिय रही हैं। प्रगतिशील कथा की एक धारा रही है जिसके प्रमुख लेखकों में नागार्जुन, यशपाल, रांगेय राघव आदि उल्लेखनीय हैं। इन साहित्यकारों को प्रतिबद्ध कथाकार भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त जो कथाधारा रही है, उसे नए कथा प्रयोगों की कथाधारा में रखा गया है। इनमें जिन मुख्य रचनाकारों को रखा गया है, वे हैं अज्ञेय, जैनेन्द्र, और इलाचंद्र जोशी। आधुनिक जीवन की जटिलताओं को इन कथाकारों ने व्यक्तिवादी माध्यम से अपनी कथाओं में प्रतिबिंबित किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में आधुनिक संवेदना का विस्तार कई स्तरों पर दिखता है जैसे- सामाजिक समस्याओं के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण, स्वतंत्रता के पश्चात् राजनैतिक उथल-पुथल के परिणाम स्वरूप उत्पन्न धार्मिक उन्माद, आर्थिक विपन्नता आदि समस्याओं और उनमें निहित संवेदनाओं को आधुनिक साहित्यिक भाषा शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् कई

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार भी हुए जिन्होंने मनुष्य के अन्दर के संघर्ष को दिखाकर आधुनिक मानव की समस्याओं और उसके संघर्ष को उपन्यास विधा के माध्यम से रूपायित किया है। स्वातंत्र्योत्तर कमोबेश जिन हिंदी उपन्यासों में आधुनिक संवेदना का विस्तार देखा जा सकता है, वो इस प्रकार हैं- 'रतिनाथ की चाची', 'नदी के द्वीप', 'पथ की खोज', 'बलचनमा', 'सूरज का सातवां घोड़ा', 'मैला आँचल', 'ज़हाज के पंछी', 'सागर लहरें और मनुष्य', 'बूंद और समुन्द्र', 'परती परिकथा', 'झूठा सच', 'अँधेरे बंद कमरे में', 'अपने अपने अजनबी', 'शहर में घूमता आईना', 'राग दरबारी', 'आधा गाँव', 'आपका बंटी', 'तमस', 'मुर्दा घर', 'सफ़ेद मेमने', 'एक चूहे की मौत', 'बेघर', और 'एक अचला-एक मनःस्थिति' आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतीय साहित्य जगत में कहानी का इतिहास बहुत अधिक पुराना नहीं है। आधुनिक हिंदी कहानी का इतिहास तो और भी नया है। आधुनिक हिंदी कहानियों में जो सबसे अधिक लोकप्रिय रही वे हैं प्रेमचंद रचित 'पूस की रात' और 'कफ़न'। इस सन्दर्भ में गंगा प्रसाद विमल अपनी पुस्तक 'आधुनिकता :साहित्य के सन्दर्भ में' लिखते हैं, "भारतीय हिंदी कहानियों का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। आधुनिक कहानियों का इतिहास तो और भी नया है। हिंदी की दो आधुनिक कहानियाँ 'पूस की रात' और 'कफ़न' का उल्लेख किया जाता है। इन्हें आधुनिक परंपरा की प्रारंभिक कहानियाँ मानना चाहिए। आधुनिक कहानी का इतिहास 1950 से प्रारंभ होता है।"[54]

पिछले दो दशकों में हिंदी के साहित्यिक जगत में कहानी को केंद्रीय स्थिति प्राप्त हुई है। यह कोई आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे जो मुख्य कारण कहा जा सकता है, वह है आधुनिकता के कारकों का दवाब। आधुनिक कारकों और दवाबों के कारण कविता के शैल्पिक मोह और विवरणों से भरे बड़े रचना संसार वाले उपन्यास विधा के स्थान पर संक्षिप्त और छोटे कलेवर से युक्त कहानी विधा अधिक रची जाने लगी। कहानी की इन्हीं विशेषताओं और तत्त्वों के कारण कहानियों की जनप्रियता अधिक बढ़ गई। साथ ही कहानी में नए प्रयोग किये गए, जिससे कहानी विधा के साथ पाठक वर्गों का तादात्म्य बढ़ता ही गया। इसके अतिरिक्त कहानी अपने रूप में भी वक्त के साथ बदलाव लायी,

जैसे इसने बेहद मानवीय प्रसंगों और सवालों को, मानवीय संकट की कहानी को कथात्मक शैली में बड़ी सरलता से अभिव्यक्त किया है। शायद यही कुछ कारण हैं जिससे आज कहानी को आधुनिक साहित्यिक विधा में पाठकों के बीच एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। नया कहानीकार एक सजग नागरिक की भांति अपनी भूमिका निभाता है । एक लम्बे अरसे तक हिंदी साहित्य में आदर्शवाद और प्रयोगवाद ने अपना कब्जा जमाकर रखा, किन्तु जल्दी ही यह स्थान आधुनिक भाव-बोध से अनुप्रेरित यथार्थवादी कहानीकारों एवं उनकी कहानियों ने ले लिया । जैसे कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग के लोगों को स्थान दिया । साथ ही इन दोनों वर्गों की यथार्थ स्थिति के प्रति अन्य लेखकों को भी लेखन हेतु प्रेरित किया । सामाजिक यथार्थ का प्रमाण स्वयं कमलेश्वर की कहानी 'खोयी हुई दिशाएँ' है । विभाजन आधारित कहानियों को भी नई पीढ़ी के कथाकारों ने नई कहानी लेखन में स्थान दिया, जो विभाजन की विभीषिका और उसके विस्थापित भाव को पाठक वर्ग तक पहुँचाती है। जैसे मोहन राकेश कृत कहानी 'मलबे का मालिक' एक ऐसी ही कहानी है जो विस्थापना के दर्द को बड़ी सूक्ष्मता से कहानी के कैनवास पर चित्रित करती है । इसके अतिरिक्त 'आर्द्रा' भी एक बेहतर उदाहरण है। विस्थापना या विस्थापित होने का विचार एक आधुनिक मनःस्थिति है जो आगे चलकर गाँव से शहर की ओर विस्थापित होने या संयुक्त परिवार से एकल परिवार में विस्थापित होने आदि के प्रसंगों में भी देखा जा सकता है। यह सभी मनःस्थितियाँ एक आधुनिक मानव की मनःस्थितियाँ हैं जो कुछ हालातों से विवश होकर करते हैं और कुछ लोग अपनी भोगवादी दृष्टि के कारण करते हैं। इस प्रकार नई कहानियों में आधुनिक मनुष्य का अकेलापन, अलगाव, असुरक्षा, अस्तित्व का संकट, सत्ता की क्रूरता, सामूहिक शोषण आदि को विषय वस्तु बनाया गया है । नई कहानियों में चित्रित और बिम्बित ये भाव सही मायने में आधुनिकता के ही बिम्ब हैं, ऐसा कहना गलत नहीं होगा। अतः समकालीन साहित्य ने इन सभी भावों को नई कहानी के माध्यम से सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि साहित्य मनुष्य के आत्म-चिंतन और इस संसार के प्रति राग का प्रतिलेखन दस्तावेज है। साथ ही मनुष्य के संघर्ष का महालेख भी कहा जा सकता है, जो संसार में संघर्षशील मानव को त्रासद परिस्थतियों से मुक्ति का मार्ग भी बतलाता है। आज समस्त संसार पूंजीवाद, राजनेताओं तथा व्यवस्था तंत्रों के हाथों में जकड़ा हुआ है। ऐसे में साहित्य की भूमिका यहाँ प्रासंगिक हो जाती है और सवाल उठता है कि क्या साहित्य इन समस्याओं से निपटने के लिए अपनी कोई सकारात्मक भूमिका निभाते हुए कुछ संभावनाएँ दे सकता है ? जिसका मार्ग मुक्ति का हो। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि एक स्पष्ट वैचारिक प्रतिबद्धता ही उन सभी संभावनाओं को तलाश सकती है, जो इस संसार के लिए कल्याणकारी है। वैचारिक प्रतिबद्धता कहें तो कोई अतिरिक्त आयाम नहीं, बल्कि वह एक दृष्टिकोण है, जो इतिहास के प्रति आस्था रखता है, वर्तमान के प्रति सचेत रहता है और भविष्य के प्रति उसकी निष्ठा होती है। इस प्रकार साहित्य किसी रचनाकार की आत्मीय निधि नहीं है, बल्कि वह एक माध्यम है जिससे मानव के जीवन-मूल्य और उससे भी आगे मानव अस्तित्व से जुड़े मुख्य प्रश्नों को वाणी देता है। अतः कोई साहित्य ऐतिहासिक संदर्भों एवं अपनी परंपरा से जुड़ा रहकर, मानव मुक्ति के प्रश्नों को उठाकर और वास्तविक जीवन से जुड़कर ही आधुनिक हो सकता है।

परंपरा और आधुनिकता की अवधारणा को विभिन्न दृष्टिकोणों से संक्षिप्त रूप में जानने के बाद निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि परंपरा और आधुनिकता दो अलग तत्व होते हुए भी एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रगतिशील दृष्टिकोण आधुनिकता को जन्म देता है और एक दिन वह परंपरा का रूप धारण कर लेता है। इस दृष्टि से जो आज आधुनिक है एक दिन वह परंपरा का रूप धारण कर लेगा। अतः गतिशीलता ही परंपरा और आधुनिकता का वास्तविक गुण है, जो उसे रूढ़ नहीं होने देता है।

सन्दर्भ-

1. पाण्डेय, चन्द्र सुरेश; आधुनिक हिंदी कविता पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव; अनुभव प्रकाशन, प्रेमनगर, कानपुर; संस्करण, प्रथम; पृ 61.
2. प्रसाद, जयशंकर; कामायनी; लोकभारती प्रकाशन, गाँधी मार्ग, इलाहाबाद: संस्करण, 2018; पृ 19.
3. वही; पृ 37.
4. सिंह, सुखबीर; समीक्षा के नए प्रतिमान; के.के. प्रकाशन, दरियागंज,नई दिल्ली; संस्करण, प्रथम, पृ 27.
5. रावत, हरिकृष्ण; समाजशास्त्र विश्वकोश; रावत प्रकाशन, जवाहर नगर, जयपुर; संस्करण, 2006; पृ 411.
6. वही; पृ 411.
7. वही; पृ 754.
8. बाहरी, हरदेव; हिंदी शब्दकोश; राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली; पृ 475.
9. पाण्डेय, प्रसाद, राजेंद्र; परंपरा का परिप्रेक्ष्य; नवचेतन प्रकाशन; उत्तमनगर,दिल्ली-59; संस्करण, 2005; पृ11.
10. वही; पृ 18.
11. वही; पृ 18.
12. वही; पृ 18.
13. वही; पृ 23.
14. वही; पृ 17.
15. पाण्डेय, मैनेजर; साहित्य और इतिहास दृष्टि; वाणी प्रकाशन, दरियागंज ,नई दिल्ली; संस्करण, 2000; पृ.137.
16. वही; पृ.137, 138.
17. पाण्डेय, प्रसाद, राजेंद्र; परंपरा का परिप्रेक्ष्य; नवचेतन प्रकाशन; उत्तमनगर,दिल्ली-59; संस्करण- 2005; पृ.21, 22.
18. शर्मा, जगदीश; साहित्य की हैसियत; राजस्थानी साहित्य संस्थान(जोधपुर); संस्करण, 1992; पृ 11.
19. वही; पृ 11.

20. वही; पृ 12.

21. शर्मा, रामविलास; संस्कृति और साहित्य; किताब महल, इलाहाबाद; संस्करण, 1963; पृ 6, 7.

22. पाण्डेय, प्रसाद राजेंद्र; परंपरा का परिप्रेक्ष्य; नवचेतन प्रकाशन; उत्तमनगर,दिल्ली-59; संस्करण, 2005; पृ.26, 27.

23. Oxford advanced learner's Dictionary; Oxford University Press; Great Clarendon street, Oxford, ox2 6dp, United Kingdom; edition-9; P-1661.

24. पाण्डेय, प्रसाद; परंपरा का परिप्रेक्ष्य; नवचेतन प्रकाशन; उत्तमनगर,दिल्ली-59; संस्करण, 2005; पृ 11.

25. वही; पृ 17.

26. शर्मा, जगदीश; साहित्य की हैसियत; राजस्थानी साहित्य संस्थान; जोधपुर,यू.आई.टी के पास; संस्करण, 1992; पृ 12.

27. पाण्डेय, प्रसाद राजेंद्र; परंपरा का परिप्रेक्ष्य; नवचेतन प्रकाशन; उत्तमनगर,दिल्ली-59; संस्करण, 2005; पृ.14.

28. वही; पृ 14, 15.

29. वही; पृ 15.

30. वही; पृ 12.

31. विमल, प्रसाद, गंगा; आधुनिकता: साहित्य के सन्दर्भ में; वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली;संस्करण, प्रथम; पृ 66.

32. अमरनाथ; हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली; राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2016; पृ 59, 60.

33. वर्मा, धीरेन्द्र; वर्मा, ब्रजेश्वर, चतुर्वेदी, रामस्वरूप; भारती, धर्मवीर; रघुवंश; हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पारिभाषिक शब्दावली; ज्ञान मंडल लिमिटेड, संतकबीर रोड, वाराणसी; संस्करण, 1985; पृ 86, 87.

34. रावत, हरिकृष्ण; समाजशास्त्र विश्वकोश; रावत प्रकाशन,जवाहर नगर, सत्यम अपार्टमेंट, जयपुर; संस्करण, 2006; पृ 237.

35. पाण्डेय, चन्द्र सुरेश; आधुनिक हिंदी कविता पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव; अनुभव प्रकाशन, प्रेमनगर,कानपुर; संस्करण, प्रथम; पृ 55, 56.

36. चौहान, सिंह, शिवदान; आलोचना; अंक.34; जुलाई.1966; पृष्ठ, 10.

37. पाण्डेय, चन्द्र सुरेश; आधुनिक हिंदी कविता पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव; अनुभव प्रकाशन, प्रेमनगर,कानपुर; संस्करण, प्रथम; पृ 57.

38. वही; पृ 58.

39. वही; पृ 59.

40. वही; पृ 55.

41. वही; पृ 56.

42. वही; पृ 56, 57.

43. रावत, चंद्रभानु; खंडेवाल, रामकुमार; आधुनिता: एक पहचान; अक्षर प्रकाशन दरियागंज,नई दिल्ली, संस्करण, 1969; पृ 331, 332.

44. धनंजय; समकालीन कहानी: कुछ विचार बिंदु; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 1989; पृ.42.

45. पाण्डेय, चन्द्र सुरेश; आधुनिक हिंदी कविता पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव; अनुभव प्रकाशन प्रेमनगर, कानपुर; संस्करण, प्रथम; पृ 51, 52.

46. वही; पृ 52.

47. वही; पृ 54.

48. नवीन, शंकर देव, मिश्र, कुमार सुशांत, उत्तर आधुनिकता : कुछ विचार; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण, 2000; पृ 56.

49. जैन, रमा; प्रसाद; शाहू शांति; नया ज्ञानोदय; भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता; फरवरी-2007, अंक-48; पृष्ठ.100, 101.

50. सक्सेना, लाला प्रसाद; आधुनिकता बोध और परंपरा; निर्मल प्रकाशन, जयपुर; संस्करण, 1972; पृ 5, 6.

51. पवार, सुभाष; कथाकार उषा प्रियंवदा; विद्या प्रकाशन, कानपुर; संस्करण, 2010; पृ 15.

52. विमल, प्रसाद गंगा; आधुनिकता: साहित्य के सन्दर्भ में; पराग प्रकाशन, महरौली, दिल्ली-30, संस्करण, 1978; पृ 17.

53. पाण्डेय, अम्बादत्त; आधुनिकता और आलोचना; प्रेम प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण,1985; पृ 10.

54. विमल, प्रसाद गंगा; आधुनिकता: साहित्य के सन्दर्भ में; पराग प्रकाशन, महरौली, दिल्ली-30, संस्करण, 1978; पृ 216.